भट्ट साहब

...और क्या कहते हैं

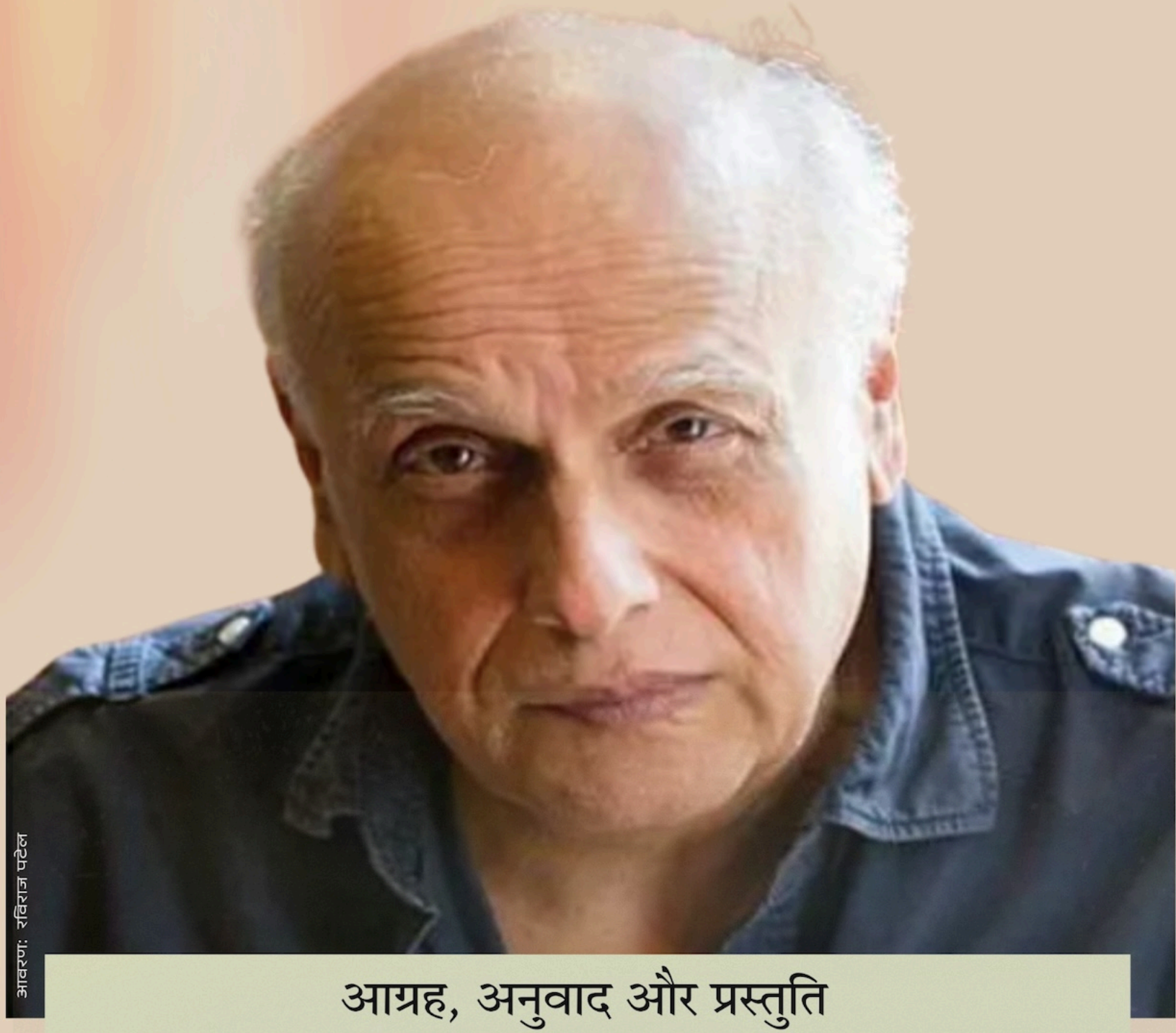

आवरण: रविराज पटेल

आग्रह, अनुवाद और प्रस्तुति

अजय ब्रह्मात्मज

भट्ट साहब

... और क्या कहते हैं

आग्रह, अनुवाद और प्रस्तुति

अजय ब्रह्मात्मज

प्रकाशक: नॉटनल

प्रकाशन: मार्च, 2025

© अजय ब्रह्मात्मज

कवर डिजाइन : रविराज पटेल

मेरी बात

17-18 साल पहले 2007-8 में भट्ट साहब (महेश भट्ट) ने मेरे आग्रह पर मनुष्य के मूल भाव और फिल्मों में उनकी अभिव्यक्तियों पर ये लेख लिखे थे। महेश भट्ट के लेखन का एक व्यक्तिपरक पहलू है। वे अपने विचार और दर्शन को स्थापित करने के लिए निजी कार्यों और फिल्मों के अनुभव को आधार बनाते हैं। उनके लेखों में आत्मपरकता रहती है। भाव और अनुभूति के इन लेखों को पढ़ाते हुए आप महसूस करेंगे कि हिंदी फिल्मों ने कैसे मनुष्य के एहसास को समझा और विभिन्न चरित्रों के माध्यम से उन्हें पर्दे पर पेश किया। गीतों और संवादों के सहारे फिल्ममेकर मानव चेतना के गूढ़ और जटिल ग्रंथियों, आकांक्षाओं और प्रतिक्रियाओं को व्यक्त करते रहे हैं। हिंदी फिल्में दर्शकों की सामूहिक चेतना को ही कहानियों का रूप देती हैं।

हिंदी फिल्मों की व्यापकता और उपयोगिता को समझने में ये लेख सहायक होंगे। इन लेखों का ऐतिहासिक महत्व है। इनमें लगभग 20 साल पहले की दुनिया का यथार्थ है। उन दिनों दुनिया डिजिटल होने की तरफ बढ़ रही थी। फिल्में बदल रही थीं, क्योंकि दर्शक बदल रहे थे। गौर करें तो बदलाव की यह प्रक्रिया अनवरत चलती रहती है। पुराना टूटता और छूटता है। नया सजता और संवरता है। हमेशा एक पीढ़ी ऐसी होती है, जो अतीत के प्रति नॉस्टैल्जिक होते हुए वर्तमान से कुढ़ती और चिढ़ती है।

इसी पुस्तक में एक प्रसंग में भट्ट साहब ने लिखा है कि शम्मी कपूर की बेपरवाही के दीवाने दर्शक उनकी ही परंपरा में आए नए सितारों के लटके-झटकों को नापसंद करते हैं।

भट्ट साहब ने सभी लेखों में आदतन खुलकर अपनी बात रखी है। वे संकोच नहीं करते। उनके लेखों और विचारों में प्रशंसा और आलोचना का अद्भुत सामंजस्य रहता है। भट्ट साहब के साथ सालों काम करने का एक लाभ हुआ है कि मैं उनकी विचार प्रक्रिया और अभिव्यक्तियों को समझ पाता हूं। जैसे उनकी फिल्में आम दर्शकों के लिए होती हैं, वैसे ही उनके लेख आम पाठकों के लिए होते हैं। वे गूढ़ दर्शन, जटिल भाव, एहसास और सोच को भी सरल शब्दों में जाहिर करते हैं।

यह पुस्तक सिनेप्रेमियों और अध्यताओं के लिए समान रूप से उपयोगी है।

फिल्में पढ़ें, फिल्में देखें और फिल्मों पर लिखें

अजय ब्रह्मात्मज

मुंबई

मार्च 2025

अनुक्रम

स्टाइल आयकॉन	6
चुंबन और सेक्स	13
तनहाई	21
ईर्ष्या	28
नफरत	35
यश	42
प्रेम	49
विद्रोही	55
प्रार्थना	62
रोमांस	68
ट्रेजडी	74
जीत	81
किशोर उम्र की प्रेमकहानी	88
देशभक्ति	95
युवा	103

अहिंसा 110

बचपन 116

विवाह 123

बदलती संस्कृति 130

निगेटिव किरदार 137

साहसी नायिकाएं 144

कॉमेडी 150

पुरस्कारों की प्रतिष्ठा 157

स्टाइल आयकॉन

हमारे मौजूदा दौर की अजीब त्रासदी है। पहले हमारे आदर्श होते थे। कौन होते थे आदर्श? हाड़-मांस के बने ये आदर्श हमारे मूल्यों और आकांक्षाओं के प्रतीक होते थे। जैसे गांधी थे। उन्होंने बहुलतावाद और धर्मनिरपेक्षता की बात की तो उसके लिए गोली खाकर मर गए वे। मगर उन्होंने कभी दुम हिलाकर अपने बहुलतावाद या धर्मनिरपेक्ष मूल्यों को हल्का नहीं होने दिया। कभी समझौता नहीं किया, इसलिए उन्हें आदर्श माना जाता है। आजकल आयकॉन होने लगे हैं और उससे भी एक कदम आगे स्टाइल आयकॉन की बातें होने लगी हैं। आदर्श या आयडियल से स्टाइल आयकॉन तक के इस सफर को समझना जरूरी है।

आदर्श अपने मूल्यों के प्रति समर्पित होते थे। आजकल आया है स्टाइल आयकॉन, जो केवल स्टाइल ही है। वह मूल्यों का संवाहक नहीं है। वह जीवन के प्रति समर्पित नहीं है, इसलिए समाज से भी उसका लगाव ऊपरी है। उसके अंदर यह प्यास भी नहीं है कि चलो अपने खोखलेपन या अपने अधूरेपन को पूरा करने के लिए कुछ ऐसे मूल्यों से अपने-आपको जोड़ें, जो आपको संपूर्ण बनाए। यह आज के दौर का व्यक्ति है। यह सिर्फ चेहरा ही चेहरा है। यह पैकेजिंग इंडस्ट्री की देन है। जहां पर केवल रूप-रंग और वस्त्र ही महत्वपूर्ण हो गया है। उपभोक्ता संस्कृति और जंक मानसिकता ने

इसे हमारे लिए जरूरी बना दिया है। इसी संस्कृति और मानसिकता में पॉपकोर्न खाता है आदमी। पॉपकोर्न का आपकी भूख या पेट भरने से कोई लेना-देना नहीं है। परदे पर चलयी-फिरती तस्वीरें देखते हुए कुछ चबाते रहो। यह बस एक हवस है हमारे जमाने की, जिसे हम पूरा करते हैं। इस दौर में हम स्टाइल आयकॉन क्रिएट करते हैं। आजकल हमारे स्टाइल आयकॉन वे लोग हैं, जिनकी जड़ें नहीं हैं। जड़हीन हैं वे। उन्हें वस्त्र पहना दिया गया है। हम जिस संस्कृति में जीते हैं, उसे आदर्शीकृत करने के लिए कुछ प्रतिनिधियों को मास्क दिया जाता है। मगर देखने वाला जानता है और पहनने वाला भी जानता है कि यह केवल मास्क ही है। उसके अंदर कुछ है नहीं। हमारा सामाजिक अस्तित्व स्टाइल से प्रेरित और ग्रस्त हो गया है। सब कुछ ऊपर-ऊपर है। कोई गहराई नहीं है।

आजादी के बाद सपनों के टूटने से मोहभंग हुआ और हम ठोस वैचारिक आधार के अभाव में अपनी जड़ों से कटते चले गए। हमारी कला और संस्कृति में भी यह जड़हीनता दिखती है। सोल्जेनित्सिन कहते थे कि पतझड़ की झलक तो पेड़ दे देते हैं। पत्तों के रंग बदलने लगते हैं। समाज के संभावित बदलाव की झलक पहले कला में दिखती है। किसी समाज के खोखलेपन को देखना है तो आप उसके आर्टस् को देखो। आप फिल्म संगीत ले लीजिए। मुकेश, रफी, किशोर कुमार, मन्ना डे, हेमंत कुमार के दौर से जब ढलान शुरू हुई तो नकल तो दूर, अब निहायत बुरे सिंगर आ गए हैं। वे सुर